बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 137

श्रम प्रवास से वृद्धि

आंध्र प्रदेश विधानसभा ने गत बुधवार को एक ऐसे कानून पर मुहर लगाई जो राज्य के उद्योगों में तीन-चौथाई नौकरियां स्थानीय लोगों के लिए आरक्षित करने का प्रावधान करता है। मुख्यमंत्री वाई एस जगन मोहन रेड्डी की पार्टी वाईएसआर कांग्रेस ने विधानसभा चुनावों के दौरान इसे चुनावी मुद्दा बनाया था और यह कदम उसी वादे को पूरा करने की दिशा में उठाया गया है। आंध्र प्रदेश में कारोबार कर रही कंपनियों को तीन वर्षों के भीतर इस कानून का पालन करने के लिए कहा गया है। केवल दवा एवं पेट्रोलियम जैसे कुछ खास क्षेत्रों की कंपनियों को ही इससे छूट दी जाएगी और वह छूट भी मामला-दर-मामला तय होगी। आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र समेत कई राज्यों में अन्य राज्यों से रोजगार की तलाश में आने वाले लोगों की बढ़ती संख्या के चलते लंबे समय से टकराव की स्थिति बनती रही है और जगन मोहन सरकार का यह फैसला उसी का नतीजा है।

राज्यों में नेता अक्सर रोजगार का वादा पूरा करने के लिए निजी क्षेत्र पर स्थानीय लोगों को काम पर रखने का दबाव बनाते हैं। लेकिन ऐसे कानून से रोजगार की तलाश कर रहे लोगों के संतुष्ट हो जाने की संभावना नहीं होती है। दरअसल बदले हुए हालात में कंपनियां आंध्र प्रदेश में काम करने से पहले दो-बार सोचेंगी। वहीं पहले से मौजूद कंपनियों की श्रम लागत बढ़ जाएगी, काम पर रखे जा सकने लायक लोगों की संख्या कम हो जाएगी। फिर वे अधिक संतोषजनक कारोबारी माहौल वाली जगह जाने का रास्ता चुनने लगेंगी, चाहे वह जगह किसी अन्य राज्य में हो या किसी दूसरे देश में। पूंजी का पलायन हकीकत बन जाएगा। वह स्थिति रोजगार सृजन एवं वृद्धि की नहीं बल्कि गतिहीनता एवं शहरी अशांति को जन्म देगी।

आंध्र प्रदेश में लंबे समय से कारोबार के प्रति दोस्ताना रवैया रखने वाली सरकारें रही हैं लेकिन नए कानून से इस धारणा पर तगड़ी चोट पहुंचेगी। राज्य सरकार ने कहा है कि कुशल कामगारों की कमी को स्थानीय लोगों को काम पर नहीं रखने का बहाना नहीं बनाया जा सकता है और ऐसा होने पर कंपनियों को उन लोगों को खुद ही प्रशिक्षण देना होगा। इस तरह यह कानून कामगारों को कुशल बनाने का दायित्व सरकार से लेकर निजी क्षेत्र पर डाल देता है। इससे भी बुरी बात यह है कि इस कानून को अन्य राज्यों में भी लागू करने की आवाज जोर पकड़ सकती है। वैसे मध्य प्रदेश की कांग्रेस सरकार की औद्योगिक नीति भी इससे खास अलग नहीं है जिसके मुताबिक सरकार की वित्तीय एवं अन्य मदद से स्थापित किसी भी कारखाने में 70 फीसदी नौकरियां स्थानीय लोगों के लिए आरक्षित रखनी होंगी।

बुरी लेकिन लोकलुभावनी नीति जंगल में लगी आग की तरह फैल सकती है। इसकी काफी संभावना है कि प्रवासी श्रमिकों की बड़ी संख्या वाले महाराष्ट्र एवं कर्नाटक जैसे राज्य भी इस तरह का कोई कानून लाने के बारे में चर्चा शुरू कर दें। ऐसा होना भारतीय संविधान के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं है। इसके अलावा यह भारत की वृद्धि संभावनाओं पर भी गहरी चोट करेगा। आर्थिक वृद्धि के सिद्धांत में एक बुनियादी एवं स्पष्ट नियम है कि अकुशल श्रमिकों को शहरों का रुख करना चाहिए ताकि वे अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने में योगदान दे सकें। अपनी क्षेत्रीय विषमताओं की वजह से भारत में यह प्रक्रिया स्वाभाविक तौर पर राज्यों के बीच भी घटनी चाहिए। ऐसे में श्रमिकों की आवाजाही पर पाबंदी लगने से भारत की वृद्धि संभावनाएं प्रभावित होंगी। चीन जैसे विशाल देशों ने इस आंतरिक प्रवास के चलते काफी अच्छा प्रदर्शन किया है।

ऐसे कानून से भारत के तटीय एवं दक्षिणी राज्यों और उत्तरी राज्यों के बीच असंतोष भी बढ़ेगा। दरअसल तटीय एवं दक्षिणी राज्य विश्व अर्थव्यवस्था से अपना तालमेल बिठा चुके हैं जबकि उत्तरी राज्यों में बेरोजगार युवाओं की भरमार है और उनके पास रोजगार के लिए नजदीकी विकल्प भी नहीं हैं।

अजय मोहंती

रक्षा तैयारी को लेकर बदलना होगा नजरिया

समय आ गया है कि प्रधानमंत्री खुद आगे आकर राष्ट्रीय सुरक्षा की प्रकृति तय करें जो आकांक्षाओं के साथ जरूरतों में भी तालमेल बिठाए। सैन्य रणनीति की समीक्षा कर रहे हैं प्रेमवीर दास

जब पाकिस्तान सेना की कुछ टुकड़ियों ने करगिल की कुछ पहाड़ियों पर चोरी-छिपे कब्जा कर लिया था तो भारतीय सेना के तत्कालीन प्रमुख ने कहा था कि 'हम उन्हीं हथियारों से लड़ेंगे जो हमारे पास हैं'। उस घटना के बीस साल बाद भी भारतीय सेना प्रमुख का कुछ उसी तरह का बयान अधिक चौंकाता नहीं है। आखिरकार हमें जरूरत पड़ने पर दुश्मन के अत्याधुनिक विमानों के मुकाबले पुराने हो चले मिग-21 विमानों को ही तैनात करना पड़ा जिनमें से एक को मार गिराया गया। इन दो दशकों में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) की अगुआई वाले राजग और कांग्रेस की अगुआई वाले संप्रग ने आधे-आधे समय तक देश पर शासन किया है। क्या हम भारत के लिए जरूरी सैन्य ताकत की पहचान कर पाने में बुनियादी तौर पर कुछ बातों को नजरअंदाज कर रहे हैं?

कुछ दिन पहले चर्चित पत्रकार शेखर गुप्ता ने इस समाचारपत्र में प्रकाशित अपने एक लेख में कहा था कि हमारी सैन्य तैयारी की प्रक्रिया में कुछ गंभीर खामियां हैं। उनका कहना था कि सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का महज दो फीसदी आवंटन रक्षा क्षेत्र के लिए किए जाने पर लगातार विलाप करना एक दोषपूर्ण तर्क है क्योंकि सरकार का उस आवंटन पर कोई नियंत्रण नहीं होता है। वह केवल केंद्र सरकार के व्यय (सीजीई) को संभालती है। इस मद में सरकार के पास 2019-20 के कुल बजट का 15.5 फीसदी ही है जो पिछले साल के 15.1 फीसदी से अधिक है। सीजीई मद से ही स्वास्थ्य, शिक्षा और कल्याण योजनाओं के लिए राशि दी जाती है। ऐसे में सरकार से रक्षा आवंटन बढ़ाने की उम्मीद करना दूर की कौड़ी है। इस संसाधन के बड़े हिस्से के राजस्व व्यय (वेतन एवं पेंशन) पर खर्च होने से आधुनिकीकरण एक सपना ही बनकर रह जाता है।

शेखर गुप्ता की कुछ अन्य संकल्पनाओं के गुण-दोष पर भी विचार करने की जरूरत है। भारत की थल सेना एवं वायु सेना अपनी अंतर्निहित ताकत के बूते लंबी लड़ाई में पाकिस्तान पर भारी पड़ेंगी लेकिन दो-तीन हफ्तों वाली सीमित लड़ाई में दोनों पक्ष कमोबेश समान स्तर पर होंगे। हालांकि इसमें नौसेना निर्णायक भूमिका निभा सकती है लेकिन निर्बाध समुद्री परिवहन में बाधा आने के डर से वैश्विक स्तर पर हंगामा मचने का जोखिम भी होगा। उनकी इस दलील के समर्थन में यही कहा जा सकता है कि उड़ी और पठानकोट के सैन्य ठिकानों पर प्रायोजित आतंकी हमलों के जवाब में सीमापार 'सर्जिकल स्ट्राइक' किया गया। बालाकोट के आतंकी शिविरों पर हमले के कुछ घंटों बाद ही पाकिस्तानी वायुसेना ने दिन के उजाले में पलटवार कर दिया था जिसमें हमारा एक मिग-21 विमान गिरा दिया गया और उसका पायलट भी पकड़ लिया गया। कुल मिलाकर, सीमित अवधि की तनातनी से किसी भी पक्ष का दबदबा बन पाने की संभावना नहीं है। अगर लंबे एवं संक्षिप्त टकराव दोनों से ही बड़ा राजनीतिक लाभ नहीं मिलेगा तो फिर क्या विकल्प है? हमने अभी तक इस बात पर भी गौर नहीं किया है कि चीन के साथ सीमा पर किस तरह की स्थिति पैदा हो सकती है? गुप्ता दो मोर्चों के लिए तैयारी की निरर्थकता का जिक्र करते हुए कहते हैं कि उसके लिए कभी भी संसाधन नहीं जुटाए जा सकते हैं।

यह राष्ट्रीय सुरक्षा की तैयारी से जुड़ी बुनियादी बातों को रेखांकित करता है। इस बारे में मोटे तौर पर दो नजरिया रहा है। पहला है खतरे के आकलन के आधार पर योजना बनाना। एक साथ दो मोर्चों पर जंग लड़ने की क्षमता हासिल करना और पाकिस्तान को सबक सिखाने जैसी बातें इसी श्रेणी में आती हैं। समय-समय पर जारी होने वाली 'रक्षा मंत्री निर्देशिका' सैन्यबलों को आसन्न खतरों के बारे में तैयार रहने को कहती है। हाल ही में राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार के नेतृत्व में एक समिति बनाई गई है जो राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति के बारे में विचार करेगी। तीनों सैन्य प्रमुखों एवं कई रक्षा विशेषज्ञों को भी जगह दी गई है। लेकिन इसकी उम्मीद कम ही है कि यह समिति खतरा आकलन वाले नजरिये से दूर हो सकेगी।

दूसरा नजरिया राष्ट्रीय हितों पर आधारित राष्ट्रीय सुरक्षा की रणनीति बनाने का है। यह दीर्घावधि लक्ष्य वाला होता है और इसमें एक समय के भीतर रक्षा तैयारी के लिए टिकाऊ ढांचा प्रदान करने पर जोर होता है। मसलन, अगर राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भारत को अगले 15 वर्षों में दुनिया की तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्था बनना जरूरी है तो हमें इसके लिए जरूरी कदमों के बारे में सोचना होगा। इसी तरह हिंद-प्रशांत क्षेत्र में अपने हितों को सुरक्षित रखने के लिए जरूरी कदमों के बारे में भी सोचना होगा। निश्चित रूप से जमीन पर तीन लाख सैनिकों को उतार देना इसका नतीजा नहीं हो सकता है। दुनिया की तीसरी-चौथी सैन्य शक्ति होने के लिए कुछ अलग करने की जरूरत है जिसमें तकनीक, अंतरिक्ष, समुद्र और हवाई शक्ति, सूचना-विज्ञान और कृत्रिम मेधा को पूरी तवज्जो देनी होगी। ऐसा होने पर ही सैन्य आधुनिकीकरण के लिए सीमित संसाधनों का अधिकतम इस्तेमाल किया जा सकता है।

दुर्भाग्य से, हमारे सैन्य योजनाकारों की मौजूदा रणनीति अब भी खतरे पर आधारित है जिसमें सैनिकों की संख्या मायने रखती है। ऐसा तब है जब खतरा पैदा करने वाले दो देशों में से एक चीन आज के समय में अपनी सेना को संख्या के बजाय लंबी अवधि के हितों के हिसाब से ढालने में जुट गया है।

सवाल है कि भारत के सैन्य रणनीतिकारों की सोच में ऐसा आमूलचूल बदलाव कैसे आएगा? रक्षा नियोजन समिति जैसे ढांचे से तो यह एकदम नहीं हो सकता है। राजग सरकार ने करगिल युद्ध के बाद राष्ट्रीय सुरक्षा के सभी पहलुओं की समीक्षा के लिए मंत्रियों का एक उच्चाधिकार प्राप्त समूह (जीओएम) बनाया था। उप प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गठित उस समूह ने तमाम सुझाव दिए थे जिनमें से सामान्य प्रकृति के सुझाव लागू कर दिए गए लेकिन व्यापक सुधार वाले सुझाव रखे रह गए। सेना मुख्यालय को सांकेतिक तौर पर 'रक्षा मंत्रालय का एकीकृत मुख्यालय' नाम दे दिया गया लेकिन सही अर्थों में समेकन बहुत कम हुआ है। तीनों सेनाओं के मुखिया 'चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ' की तैनाती अब तक नहीं हुई है। अगर वह जीओएम हमें हित-आधारित नजरिया अपनाने की तरफ नहीं ले जा सका तो फिर कौन कर पाएगा?

निहित स्वार्थ रखने वाले समूहों को संतुष्ट करने की कोशिश हमें कहीं नहीं ले जाएगी। अब हमारे पास एक ऐसा प्रधानमंत्री है जो पहले नहीं हो पाई चीजें कर पाने का भी दुस्साहस दिखाता है। केवल उनका व्यक्तिगत प्रभाव ही यथास्थिति को तोड़ पाने लायक बनाएगा जैसा नोटबंदी के समय हुआ था। समय आ गया है कि प्रधानमंत्री खुद आगे आकर राष्ट्रीय सुरक्षा की प्रकृति तय करें जो हमारी आकांक्षाओं के साथ जरूरतों में भी तालमेल बिठाए।

(लेखक राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार बोर्ड के पूर्व सदस्य हैं)

क्षेत्रीय भाषाओं में अदालती फैसलों का अनुवाद नहीं आसान

अदालती आईना

एम जे एंटनी

साहित्यिक पुस्तकों के बारे में कहा जाता है कि उनका अनुवाद उतना मजेदार नहीं होता है। अनूदित संस्करण में उस रचना की खूबसूरती काफी हद तक कम हो जाती है। लेकिन अंग्रेजी में सुनाए गए अदालती फैसले का अगर कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद होता है तो वह एक डरावने सपने जैसा होगा। पश्चिमी न्यायशास्त्र संबंधी अनुवादों के साथ भारत का संपर्क बहुत पुराना नहीं है, लिहाजा स्थानीय भाषाओं में अदालती फैसलों का अनुवाद करना खासा चुनौतीपूर्ण होगा।

न्यायपालिका ने हाल ही में एक महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम शुरू किया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के फैसलों का स्थानीय भाषाओं में भी अनुवाद किया जाएगा। लेकिन केशवानंद भारती, न्यायाधीश नियुक्ति एवं निजता के अधिकार संबंधी कई मामले सैकड़ों पृष्ठों के होते हैं जिन्हें पढ़ना आसान नहीं होता है। पृष्ठ के निचले हिस्से में फुटनोट और संदर्भों का जिक्र भी होता है। इन फैसलों में प्राचीन शैली वाली अंग्रेजी के साथ लातिन एवं फ्रांसीसी शब्दों एवं उद्धरणों की भरमार होती है। अमेरिका एवं राष्ट्रमंडल देशों के कानूनी फैसलों का भी जिक्र होता है।

कई न्यायाधीशों में मुखर होने की प्रवृति होती है जिसके लिए उनकी आलोचना भी होती है। स्वर्गीय न्यायमूर्ति वी आर कृष्ण अय्यर अपने अहम फैसलों में लगातार लंबे वाक्यों का इस्तेमाल करते रहे। कई दूसरे न्यायाधीश भी लच्छेदार शब्दों एवं वाक्य-विन्यास का इस्तेमाल करते हैं। हाल ही में मुख्य न्यायाधीश रंजन गोगोई ने अहम फैसलों का संक्षिप्त सारांश मुहैया कराने की एक परियोजना का कथित तौर पर खाका तैयार किया है लेकिन इस पर काम शुरू नहीं हो पाया है।

हमारी न्यायपालिका डिजिटल तकनीक के इस्तेमाल में उतनी सहज नहीं है। हालांकि वह खुद को पूरी तरह कागज रहित करने का ऐलान कर चुकी है। उसने सर्वोच्च न्यायालय परिसर के एकदम पास में स्थित अप्पू घर के पुराने परिसर में 12 एकड़ से अधिक जमीन अपने कागजात रखने के लिए ली है। न्यायपालिका में अनुवाद के लिए जरूरी कंप्यूटरों की भी कमी है। अगर इस काम में कृत्रिम मेधा (एआई) आधारित तकनीक का इस्तेमाल किया भी जाता है तो न्यायाधीशों की भाषा-शैली से पार पाना आसान नहीं होगा।

मशीनी अनुवाद में होने वाली भयंकर भूल को लेकर एक कहानी काफी मशहूर है। अमेरिकी जांच एजेंसी सीआईए ने रूसी भाषा से कुछ कागजात अंग्रेजी में अनुवाद करने के लिए कंप्यूटर की मदद ली थी। उस कागज में एक जगह बाइबिल से जुड़ा एक वाक्य 'स्पिरिट इज विलिंग बट फ्लेश इज वीक' आया तो कंप्यूटर ने 'स्पिरिट' के लिए 'वोदका' और 'फ्लेश' के लिए 'मीट' शब्दों का इस्तेमाल किया गया। इसका मतलब है कि सटीक अनुवाद के लिए बड़ी संख्या में प्रशिक्षित अनुवादकों को काम पर लगाना होगा।

अदालतों में 'होगा' और 'हो सकता है' जैसे सरल शब्दों को लेकर भी अंतहीन बहस चलती है जिनका उल्लेख फैसलों में भी होता है। लंबी एवं जटिल चर्चाओं के बाद किसी कानून में अंग्रेजी के 'शैल' शब्द को 'मे' के तौर पर पढ़ा जा सकता है जबकि 'मे' का मतलब 'शैल' लगाया जा सकता है। कानूनी फैसलों के जर्नल में एक अलग खंड होता है जिसमें साधारण शब्दावलियों की भी अदालतों ने अलग व्याख्या की होती है।

फैसले तो अनुवाद से जुड़ी समस्या का महज एक हिस्सा हैं। कानूनों को लिखने वाले लोग अक्सर न्यायाधीशों के गलत उद्धरण से हैरान हैं। कुछ कानूनविदों का मानना है कि सुनवाई करने वाली अदालतों में आने वाले आधे मामले तो गलत ढंग से कानून लिखे जाने के कारण पैदा होते हैं। जब फैसले लिखे जाते हैं तो कई पृष्ठों तक फैले प्रावधानों का उसी तरह उल्लेख किया जाता है। इससे अनुवाद करने वाले शख्स के लिए काम दोगुना मुश्किल हो जाता है। पिछले हफ्ते सर्वोच्च न्यायालय को संतुष्ट करने के लिए झारखंड के एक शराब बिक्री संबंधी कानूनी प्रावधान का अनुवाद दो बार करना पड़ा। दरअसल उस कानून के प्रावधानों का उल्लेख मिली-जुली भाषा में नियम 106 (ठ) किया गया था। ऐसे में समस्या तब और गंभीर हो जाएगी जब फैसलों का संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल 23 भाषाओं में अनुवाद करना होगा जिनमें बोडो, संथाली और संस्कृत भी शामिल हैं।

सर्वोच्च न्यायालय ने कानून-निर्माताओं की कई बार खिंचाई भी की है कि वे टाइपिंग के दौरान की गलतियों की तरफ ध्यान दिलाने के बावजूद उन्हें सुधारते नहीं हैं। ऐसे में न्यायाधीशों को कानून के बेढंगे प्रावधानों को हटाना पड़ता है। उत्पाद शुल्क अधिनियम के चार प्रावधानों के बारे में न्यायालय ने कहा, 'समय-समय पर संशोधन होने के बाद ये प्रावधान इतने जटिल हो गए हैं कि उनका मतलब समझने के लिए उन्हें आगे-पीछे कर कई बार समझना पड़ता है।' कुछ ऐसी ही स्थिति में एक ब्रिटिश न्यायाधीश ने कहा था कि उन्होंने मतलब समझने के लिए कई बार उस प्रावधान को पढ़ा लेकिन कामयाबी नहीं मिली। अगर न्यायाधीशों को इस तरह की स्थिति का सामना करना पड़ता है तो फिर एक अनुवादक के साथ क्या होगा? कानूनी पेशे में तो शब्दों को कानून और फैसलों को धर्मग्रंथ के तौर पर देखा जाता है।

उस पुरानी कहावत को याद रखना सही है कि नरक की तरफ जाने वाला रास्ता बढ़िया इरादों से भरा होता है। अदालती फैसलों का स्थानीय भाषाओं में अनुवाद कराना राजनीतिक तौर पर सही हो सकता है लेकिन तात्कालिक जरूरत इन फैसलों का सारांश मुहैया कराने की है। करीब एक हजार पृष्ठों वाले केशवानंद निर्णय में खुद न्यायाधीशों को भी यह लगा था कि इसका सारांश दिया जाए। लेकिन वह सारांश भी विवादों में आ गया। कहा जाता है कि संविधान के मूल ढांचे की संकल्पना दरअसल इस सारांश की ही उपज है जबकि मूल फैसले में इसका उल्लेख नहीं है। कानून की दुनिया में ऐसी फंसाने वाली चीजों की भरमार है।

कानाफूसी

इरानी की आपत्ति

ऐसा कम ही देखने को मिलता है कि कोई केंद्रीय मंत्री अपनी ही पार्टी के किसी सांसद के भाषण पर आपत्ति प्रकट करे। बुधवार को राज्य सभा में बाल यौन अपराध संरक्षण (संशोधन) विधेयक पर चर्चा के दौरान विधेयक पेश करने वाली केंद्रीय महिला एवं बाल विकास मंत्री स्मृति इरानी ने भाजपा के ही नेता हरनाथ सिंह यादव के भाषण पर आपत्ति जताई। 78 वर्षीय यादव राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पूर्व प्रचारक हैं। उन्होंने कहा कि टेलीविजन, फिल्मों और सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव के कारण महिलाओं और बच्चों के खिलाफ अपराध बढ़ रहे हैं। उन्होंने कहा कि फिल्मों की नायिकाएं टेलीविजन पर कंडोम बेचती हैं और एक जानेमाने अभिनेता को शैंपू बेचने के नाम पर महिलाओं को लुभाने के तरीके बताते देखा जा सकता है। यादव ने समाजवादी पार्टी की सदस्य जया बच्चन के विरोध की अनदेखी करके अपनी बात कहनी जारी रखी। उन्होंने कहा कि हाल ही में उनके एक मित्र ने उन्हें पोर्न के बारे में बताया। उन्होंने कहा कि वह पॉपकॉर्न के बारे में तो जानते हैं लेकिन यह पोर्न क्या है? इस पर इरानी ने यादव से कहा, 'आप बुजुर्ग हैं। यहां महिलाएं बैठी हैं। समूचा देश देख रहा है। आप अपनी आपत्ति को अधिक शालीन शब्दों में भी दोहरा सकते हैं।'

आपका पक्ष

प्लास्टिक के सभी उत्पादों पर लगे रोक

सरकार ने प्लास्टिक के थैलों पर प्रतिबंध लगाया है लेकिन क्या सिर्फ प्लास्टिक के थैलों से इस समस्या का हल संभव है। देश में प्लास्टिक कचरे का निपटान एक गंभीर चुनौती बनी हुई है क्योंकि प्लास्टिक को नष्ट होने में करीब 200 साल का वक्त लगता है। भारत ही नहीं दुनिया के कई देश प्लास्टिक कचरे के निपटान के लिए परेशान हैं। नदियों में प्लास्टिक के कचरे बह रहे हैं तो वहीं समुद्र तट पर भी प्लास्टिक के कचरे का भंडार दिख जाता है। प्लास्टिक के कचरे के कारण नाला जाम हो जाता है जो बारिश के दिनों में जलजमाव की मुख्य वजह बनती है। भारत में प्लास्टिक की थैलियों पर प्रतिबंध लगाया गया है। लेकिन प्लास्टिक का उपयोग सिर्फ थैलों में ही नहीं बल्कि कई वस्तुओं के निर्माण में होता है। हजारों ऐसे उत्पाद हैं जिनमें प्लास्टिक का इस्तेमाल होता है। घरों में इस्तेमाल होने वाले कई उपकरणों से लेकर

साफ सफाई करने वाले उत्पाद में भी प्लास्टिक का उपयोग होता है। घरों में इस्तेमाल होने वाला झाड़ू भी प्लास्टिक का बनने लगा है। कई उपकरण या वस्तुएं ऐसी हैं जिनके बाहरी ढांचा प्लास्टिक का बना होता है। खाने पीने की वस्तुओं को भी प्लास्टिक के बोतल या प्लास्टिक के डिब्बे भर कर बेचा जा रहा है। आज इतनी वस्तुएं

सरकार को प्लास्टिक के सभी उत्पादों तथा पुर्जों पर पूरी तरह से प्रतिबंध लगाना चाहिए

प्लास्टिक से बन रही हैं जिसका विकल्प अभी तक नहीं खोजा जा सका है। अगर प्लास्टिक पर प्रतिबंध लगाना है तो प्लास्टिक से निर्मित सभी वस्तुओं पर प्रतिबंध लगाना चाहिए। सिर्फ प्लास्टिक की थैली पर प्रतिबंध लगाने से इस समस्या का समाधान नहीं होगा। सरकार को इसका विकल्प खोज पर कंपनियों को देना चाहिए तथा इसके बाद प्लास्टिक पर प्रतिबंध लगाना चाहिए।

स्वाति शर्मा, नोएडा

घाटी में आतंकवाद का धंधा बंद हो

जम्मू कश्मीर में सीमा पार से होने वाले व्यापार का फायदा आतंकवादियों को धन प्रवाह के रूप में मिल रहा है। व्यापार के बहाने आतंकवादियों की फंडिंग की जा रही है। यह खुलासा एनआईए ने कई जगह छापेमारी कर किया है। घाटी को अशांत रखने की साजिश पाकिस्तान की है जिससे वह जम्मू कश्मीर पर पूरी तरह से कब्जा कर सके। लेकिन भारत आतंकवादियों तथा उन्हें समर्थन करने वालों पर कड़ी कार्रवाई कर रहा है। सरकार को जम्मू कश्मीर समस्या का हल राजनीतिक नहीं बल्कि सैन्य कार्रवाई करके करना चाहिए। घाटी में आतंकवादी घटनाओं को अंजाम देने के लिए भले ही सीमा पार से आतंकी आते हों लेकिन वह बिना शह के ऐसी घटनाओं को अंजाम नहीं दे सकता है। सरकार को आतंकियों को शह देने वालों का पता लगाना चाहिए तथा उन पर राष्ट्रद्रोह का मामला दर्ज कर कार्रवाई करनी चाहिए। पिछले कई दशक से घाटी अशांत है और इसका कारण पड़ोसी देश पाकिस्तान है। खबरों के मुताबिक घाटी में व्यापार कर रहे कुछ कारोबारी व्यापार के बहाने पकिस्तान से बड़ी मात्रा में धन ला रहे हैं जिसे आतंवादियों की फंडिंग हो रही है। आज भारत तकनीक क्षेत्र में काफी आगे निकल गया है। सरकार को घाटी में सैटेलाइट का सहारा लेना चाहिए तथा आतंकियों को खोज कर कार्रवाई करनी चाहिए।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।